ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(12): 424-427
www.allresearchjournal.com
Received: 10-10-2019
Accepted: 19-11-2019

डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं संस्कृत विभाग अध्यक्ष, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय चरखारी, महोबा, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author:
डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं संस्कृत विभाग अध्यक्ष, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय चरखारी, महोबा, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृत वाङ्मय में आचार्य भर्तृहरि एवम् उनके राजकीयध्सामाजिक नैतिक मूल्य

डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी

प्रस्तावना

आचार्य भर्तृहरि का जीवन परिचय

ये संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् के साथ ही उज्जयिनी के प्रजापालक, गुणानुरागी एवं प्रभावशाली राजा थे। अतः महाकवि व महाराज भर्तृहरि भी कहे जाते हैं। ये गन्धर्व सेन नामक राजा के पुत्र थे।

रचनाएँ

संस्कृत वाङ्मय में जहां तक हम दृष्टि डालते हैं तो आचार्य भर्तृहरि ने महर्षि पतञ्जलि द्वारा लिखित व्याकरण के ग्रन्थ– 'महाभाष्यम्, 'पर अपना 'महाभाष्य दीपिका' नामक टीका ग्रन्थ लिखा है। और 'वाक्यपदीयम्' नाम का व्याकरण दर्शन का प्रसिद्ध स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा है। साथ ही सुभाषित त्रिशती अर्थात् शृंगार शतकम्, नीति शतकम् और वैराग्य शतकम् ये तीन शतक ग्रन्थ लिखे हैं– ये शतकत्रय के नाम से जाने जाते हैं।

इन्हीं शतकत्रय में से मेरा प्रतिपाद्य विषय का शोध–पत्र 'नीतिशतकम' पर आधारित है। जिसमें उन्होंने लोक व्यवहार राजा या राजकीय प्रशासक सामाजिक एवं राजनीतिक तथा मानवीय मूल्यों को बहुत अच्छे ढंग से प्रतिपादित किया है । शतक का अर्थ सौ 100 है अर्थात् जिसमें कम से कम 100 श्लोक लिखे हैं। यद्यपि इनके नीतिशतकम् में मङ्गलाचरण सहित 102 श्लोक प्राप्त होते हैं जो नीति से संबंधित हैं। इतना ही नहीं परिशिष्ट के रूप में 18 अतिरिक्त श्लोक भी प्राप्त होते हैं। जो अत्यन्त मार्मिक हैं।

इनमें

1. "यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता"।
2. "साहित्य संगीत कला विहीनः" तथा।
3. "येषां न विद्या न तोप न दानम्"।

आदि प्रसिद्ध श्लोक भी हैं।

समय

इनका समय इतिहास में अभी तक अनिश्चित सा ही है।

अनेक विद्वान् इत्सिंग नामक चीनी यात्री का अनुसरण करके भर्तृहरि का समय सप्तमी शदी ईस्वी का उत्तरार्द्ध मानते हैं। कोई छठी शताब्दी, कोई सातवीं शताब्दी कहते हैं। युधिष्ठर मीमांसक के लेख की भूल की ओर संकेत करते हुए युक्ति युक्त प्रमाणों के आधार पर भर्तृहरि का समय ईसा से कई शताब्दी पूर्व सिद्ध करने का प्रयास किया है जबकि संस्कृत ग्रंथों को यदि आलोडन करते हैं तो श्महाभाष्य" ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में लिखा गया है और उसके बाद ही इन्होंने महाभाष्य पर टीका लिखी थी

तो प्रथम शताब्दी में इनका समय निश्चित होता है। मेरे निष्कर्षयोंक यह उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के सौतेले बड़े भाई और यह नाथ सम्प्रदाय के योगी सिद्ध सन्त बनने से पहले एक संस्कृत कवि तथा उज्जयिनी के प्रजापालक विद्वान् राजा थे। इनके छोटे भाई सम्राट् विक्रमादित्य राजा बनने से पहले स्वयम् इनके प्रधानमंत्री थे। यहां तक कि जब राजा भर्तृहरि राज्य कार्य करते समय युवावस्था में श्रृंगार में कुछ अधिक व्यस्त हो गए थे तथा राज्य कार्यों में ध्यान नहीं देते थे। तब प्रधानमंत्री विक्रमादित्य ही राज काज चलाते थे। इतना ही नहीं यह अपने छोटे भाई मंत्री विक्रमादित्य पर बहुत विश्वास भी करते थे।

एक किंवदंती केअनुसार इनके साथ एक ऐसी घटना घटी अपनी पत्नी के मना करने पर भी जंगल में उन्होंने एक हिरण को मार दिया जो हिरणों के बड़े परिवार का मुखिया था और जब बाण लगने पर राजा भर्तृहरि उसके पास पहुंचे तो वह हिरण घायल अवस्था में बोला कि हे शिकारी मानव! तुमने मुझे बाण से मारकर मेरे परिवार को तो अनाथ कर ही दिया किन्तु मरने से पहले अपनी एक अन्तिम इच्छा बताना चाहता हूँ। यदि उसे पूरा करोगे तो मेरी मृत्यु मङ्गल हो जायेगी मुझे मृत्यु का कोई दुःख नहीं रहेगा। वह अन्तिम इच्छा यह है कि ष्मेरी खाल किसी योगी साधु को दे देना और मेरा शरीर उस पापी राजा को दे देना। इन बातों से व्यथित मन राजा भर्तृहरि उसे जीवित करने के लिए गुरु गोरक्षनाथ जी महाराज की खोज में में चल पडे। उनकी भेंट आगे चलकर गुरु गोरखनाथ जी से हो गई और उन्होंने कहा कि इस हिरण को जिंदा तो कर दूंगा पर मेरी यह एक शर्त होगी कि तुम्हें मेरा शिष्य बनना पड़ेगा अर्थात् राजपाट छोड़कर योगी साधु होना पड़ेगा। जिसे राजा भर्तृहरि ने स्वीकार कर लिया।

दूसरी प्रमुख घटना यह है कि इनकी रानी का नाम था पिंगला और ये रानी से बहुत प्यार करते थे। एक दिन एक तपस्वी ब्राह्मण साधु को उनकी तपस्या साधना का परिणाम स्वरूप एक अमर फल प्राप्त हुआ था तो उसने सोचा कि मैं अधिक दिन तक जीवित रहकर क्या करूंगा।

मैं यह फल राजा को देता हूं। किन्तु राजा भर्तृहरि उस फल को लेकर के स्वयं नहीं खाए और विचार किया कि मैं इस फल को अपनी रानी को दे देता हूं। क्योंकि सबसे ज्यादा उसी को चाहते थे और वह रानी पिंगला को अमर फल देते हैं और समझा देते हैं कि इसके खाने से तुम चिर यौवना बनी रहोगी किन्तु रानी वह फल स्वयं न खाकर अपने प्रेमी को देती है । क्योंकि रानी अपने राज्य के ही सेनापति पर मोहित थी उससे अधिक प्रेम करने के कारण रानी पिंगला ने उस अमर फल को उसे दे दिया और यह समझा दिया।

कि यह फल खा लेने से तुम हमेशा युवा रहोगे और अमर हो जाओगे। मगर यह बात थी कि वह भी रानी से उतना प्यार नहीं करता था; जितना रानी करती थी। बल्कि वह राज्य की एक वेश्या से प्यार करता था और उस फल को वह राज्य कर्मचारी सेनापति अपनी प्रेयसी वेश्या को दे देता है ।और उसे यह बात समझाता है मगर वेश्या सोचती है कि मैं यदि इस फल को खा लूंगी और बहुत समय तक इस दुष्कर्म को करते हुए और अधिक जीवित रहूँगी तो ठीक नहीं है। मैं पाप कमाऊंगी इसीलिए मेरा बहुत अधिक समय तक जीवित रहना ठीक नहीं है। मैं इस फल को राजा को दे देती हूं क्योंकि राजा को अधिक चाहती थी और वह राजा को फल दे देती है, फल राजा के हांथ में आता है तो राजा को बड़ा आश्चर्य होता है कि यह फल मैंने रानी को दिया था। जब राजा भर्तृहरि ने यह पूँछा कि यह फल तुम्हें कहां से मिला तो उसने यह बताया कि मुझे एक राज्य कर्मचारी सेनापति ने दिया है तब यह जानकर मन में वैराग्य हो गया तथा एक श्लोक लिखा–

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।"(1)

अर्थात्– मैं जिस स्त्री का निरंतर चिंतन करता हूं। जिससे मैं अनन्य भाव से प्रेम करता हूं; वह स्त्री मुझसे विरत है। वह किसी और से अनुराग रखती है, मुझसे प्रेम नहीं रखती अपितु उदासीन है। वह स्त्री अन्य पुरुष को चाहती है। पर वह पुरुष अन्य नायिका पर आसक्त है। कोई अन्य स्त्री मेरे लिए अनुराग रखती है। अतः उस स्त्री को और उस मनुष्य को, कामदेव को, इस स्त्री को और मुझको भी धिक्कार है,जो जिसको चाहता है, वह उस पर अनुराग नहीं रखता तो सब धिक्कार के पात्र हैं और साथ ही इस लौकिक इंद्रिय प्रेम के कारणभूत कामदेव को भी धिक्कार है और इस प्रकार स्त्री जाल में फंसने के कारण मुझे भी धिक्कार है। जब महाराज भर्तृहरि को अपनी पत्नी रानी पिंगला के विश्वासघाती व्यवहार से क्षुब्ध होकर व्यथित मन से वैराय उत्पन्न हो जाता है। और वह राज्य छोड़कर वन को प्रस्थान करने लगते हैं। तब वे इस श्लोक को कहकर पूर्व स्थिति पर पश्चात्ताप प्रकट करते हैं।

तत्पश्चात् राजा भर्तृहरि अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को राज्य सौंप कर स्वयं योगी हो जाते हैं, बन को चले जाते हैं।

उनके राजनीतिक व सामाजिक नैतिक मूल्य–

अस्तु यह संस्कृत वांग्मय में महाराज आचार्य भर्तृहरि जी की व्यक्तिगत स्थिति के बारे में मैंने आप लोगों के समक्ष वर्णन किया है, किन्तु उनके द्वारा लिखित नीतिशतकम् ग्रंथ में जो उन्होंने लोक सम्बन्धी अनुभव राजनीतिक सामाजिक नैतिक मूल्यों का उपदेश किया है उसे हृदयंगम करना सभी के लिए नितान्त आवश्यक और उपयोगी है।

सर्व प्रथम उन्होंने परमेश्वर की प्रार्थना की है और उसमें परमेश्वर को स्वानुभूति का विषय बताया है। वह ब्रह्म या परमेश्वर दिशा काल आदि से भी बृहद् है अनंत है और चित् स्वरूप है। किन्तु परमेश्वर की सत्ता है इसके लिए उन्होंने स्वानुभूति को एकमात्र प्रमाण माना है; स्वानुभूति को ही सर्वोपरि माना है।

तदनुसार मङ्गलाचरण में लिखते हैं–

"कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।(2)नी०श०मं०१।।

अर्थात् जो दिग्देशकालादि से परिच्छिन्न नहीं होता, जिसके होने में स्वानुभूति ही एकमात्र सुन्दर प्रमाण है उस अनन्त चौतन्यमात्रमूर्ति शान्त और तेजःस्वरूप अर्थात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मेरा नमस्कार है। एतदनंतर उन्होंने समाज में विद्वान्, धन सम्पन्न व गर्व से दूषित शासकवर्ग तथा अज्ञानी मूर्ख जन तीन श्रेणी के लोग बताएं हैं। किन्तु तीनों श्रेणियों के लोगों में एक–दोष व्याप्त होने के कारण वे कवियों के लोकोपकारी सुभाषित अमृततुल्य नीति वचनों का लाभ नहीं उठा पाते। क्यों और कौन सुनें किसे सुनाएंगे इस भाव के कारण कविजन क्या करें, समाज मार्गदर्शन कैसे हो यह कवि राजा भर्तृहरि की चिन्ता दृष्टिगोचर होती है। यथा–

बोद्धारो मत्सर ग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् "3।।

अर्थात् विद्वज्जन मात्सर्य असूया से युक्त हैं वे दूसरे को सह या सुन नहीं पाते, सामर्थ्यवान् शासक गर्व से दुर्विनीत हैं और दूसरे लोग अज्ञानी हैं, मूढता से युक्त हैं। वे इनका महत्व ही नहीं जानते। इसीलिए सुभाषित समाज का हितचिन्तन करने वाले विद्वान् कवियों के शरीर के अंदर ही रह जाता है, बाहर नहीं निकल पाता अंदर मन में ही छिपा रह जाता है।

इसमें कवि कहना चाहता है कि विद्वज्जनों तथा राजा आदि सामर्थ्यवान् संभ्रांत जनों को कवियों के सुभाषित अवश्य सुनने चाहिए। क्योंकि तीसरा तबका तो सुनने समझने वाला ही नहीं है। जो बज्र मूर्ख है उसे अपनी बात पर ही चलना है। कुछ मानना ही नहीं है, तो उसे तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि वह अपनी अज्ञानता या मूढता से ही उपहत है। अतः भर्तृहरि यह मानते हैं कि किसी की ना सुनने वाले बज्र मूर्ख को समझाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

"ज्ञानलवदुर्विदग्धो हि ब्रह्माऽपि तं परं न रञ्जयति।। (4)
"नी०श०श्लो०3"।

इसी बात को हिन्दी साहित्य के शशि संत शिरोमणि तुलसीदास जी ने भी कुछ इस तरह कहा है कि–

फूलहिं फलहिं न वेंत यदपि सुधा वर्षहिं जलद।
मूरख ह्रदयं न चेत जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम5"।।

अस्तु– ऐसे मूर्खों को विद्वानों की सभा में मौन रहने का विमर्श देते हुए यह कहते हैं कि विद्वानों की सभा में मूर्खों का मौन रहना एक बहुत बड़ा गुण या आभूषण बन जाता है। अतः विद्वत्सभा में मूर्खों को मौन रहने की सलाह देते हुए लिखते हैं–

स्वायत्तमेकान्तहितंविधात्रा,विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे, विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।
अन्यत्रापि उक्तम् आंग्ल भाषायामपि च केनाऽप्यभिहितम्।

"। विवूसीमदीम पेपेसमदज पूेपेम."
"पैसमदबम पे जीमेंमिज बवनतेम वित जीम उंदीव पे कपमिितमदज वीपिउेमसि."
"पैसमदबम पे जीमूपज विविवसे.

अस्तु भर्तृहरि जी यह भी लिखते हैं कि शास्त्रों में सभी की औषधि है किन्तु वज्र मूर्ख की कोई औषधि नहीं है।

"सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्र विहितं
मूर्खस्य नास्त्यौषधम्"(6)।।

इसके आगे कई श्लोकों में राजा और धनी मानी जनों प्रशासकों को उन्होंने चेताया है कि विद्वान् दुर्लभ है। उनका कभी निरादर ना करें हमेशा आदर करें और उनसे आपकी कभी स्पर्धा नहीं हो सकती है। राजा अपने देश में ही पूजित होता है। जबकि विद्वान् की सर्वत्र पूजा होती है। उन्होंने विद्वानों और विद्या की बहुत प्रशंसा की है, यहां तक कि विद्या विहीन को पशु तुल्य कह दिया है।

"विद्या विहीनः पशुः" 7।।

अतः मानव को प्रयास करके विद्या अवश्य प्राप्त करना चाहए क्योंकि विद्या से मनुष्य का नया स्वरूप निखर कर सामने आता है। विद्वान् कवि ने ष्संस्कार युक्त वाणी को ही मनुष्य का सबसे बड़ा आभूषण माना है"(8)।

केयूरा न विभूषयिन्त पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नाऽलंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणंभूषणम्।।

आगे विद्या की प्रशंसा में कहा–
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम् प्रच्छन्नगुप्तंधनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्याबन्धुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्या विहीनः पशुः।।

नीतिज्ञ कवि राजा भर्तृहरि ने मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को सुंदर बनाने और व्यक्तित्व विकास हेतु कुछ विशिष्ट बातों का निर्देश किया है।
जैसे– वे कहते हैं कि षजिस व्यक्ति के पास यदि क्षमा है तो वह उस व्यक्ति का सबसे बड़ा कवच है। जबकि क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। पैतृक संपत्ति का बंटवारा कराने वाले स्वज्ञाति के उग्र लोग अग्नि है। सन्मित्र को दिव्य औषधि कहा है। दुर्जनों को सर्प, लज्जा को आभूषण, निर्दोष विद्या को ही सबसे बड़ा धन तथा विद्वत्ता और कवित्व को कवि ने सट्टचा वैभव कहा है"(9)।।
उन्होंने सज्जनों के साथ प्रीति तथा सत्सङ्गति को उन्नति का मूल बताया है।

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्"10।।

इस संसार में मनुष्य किस कारण से अपना स्वत्व नष्ट कर देता है,चाहे वह राजा का धन राज्य आदि हो, चाहे गृहस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण हो या कोई किसान आदि अन्य लोग कैसे अपना सम्मान या धन नष्ट कर देते है; और उन्हें क्या सावधानी रखनी चाहिए

महाकवि भर्तृहरि बड़े सुन्दर ढंग से निम्नानुसार प्रतिपादित करतें हैं–
"दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिःसङ्गात्सुतो लालनात्,
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयात्,
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् 11"।।

अर्थात् झदुष्ट मंत्रियों की गलत सलाह से राजा का धन और राज्य सब नष्ट हो जाता है। योगी सन्यासी जन संसर्ग के कारण नष्ट हो जाता है। वहीं पुत्र अधिक लाड़ प्यार से बिगड़ जाता है ब्राह्मण वेदशास्त्र आदि के अध्ययन न करने से नष्ट हो जाता है। वंश कुपुत्रसे नष्ट हो जाता है। सत्स्वभाव या शील दुर्जनों के सहवास से नष्ट होता है। जबकि लज्जा मद्यपान से नष्ट हो जाती है, खेती देखभाल न करने से नष्ट हो जाती है तो स्नेह प्रवास से अर्थात् देशांतर में वास करने से नष्ट हो जाता है । समृद्धि (ऐश्वर्य) अनीति (अन्याय) से नष्ट होती है और धन त्याग से तथा प्रमाद = आलस्य या अनवधान से नष्ट हो जाता है।
नीतिज्ञ कवि राजा भर्तृहरि पृथ्वी शासकों/राजाओं तथा राष्ट्राध्यक्षों को सलाह दी है कि करदाता प्रजाजनों के पालन–पोषण का ध्यान रखते हुए ही उनसे आयकर रूपी धन प्राप्त करें जैसे– यदि स्वामी गाय के बछड़े का पेट भरने के लिए पर्याप्त दूध नहीं छोडेगा या बछड़े का पूर्ण पोषण आहार नहीं देगा तो बछड़ा दम तोड़ देगा; फलतः गाय दूध देना बन्द कर देगी। किन्तु यदि बछड़े का पोषण सुन्दर ढंग से होता रहेगा तो गाय कामधेनु हो जायेगी। इसी प्रकार प्रजा पोषण के साथ पृथ्वी राजा के लिए कल्पलता बन जायेगी; अर्थात् मनचाहा बहु प्रकार से धन द्रव्य देने वाली हो जायेगी। देखें नीतिश्लोक इस प्रकार है–

"राजन् दुधुक्षति यदि क्षिति धेनुमेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुम्पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशम्परिपुष्यमाणे,
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमिः"(12)।।

अर्थात् हे राजन्! यदि अपने हांथ में आई हुई धेनु रूपी पृथ्वी से मनचाहा धन दुहना चाहते हो तो पहले इस लोकसमूह या जन समुदायरूपी बछड़े का पोषण करो; यदि इसका अच्छा पोषण हुआ तो यह गाय रूपी पृथ्वी कल्पवृक्ष की लता के समान अनेक फलस्वरूप मनचाहा धन देने वाली होगी"।
इसी प्रसंग में कवि ने ष्राजनीति को वेश्या की तरह बहुरंगरूप वाली बताया है"।

"वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा"(13)।।

क्योंकि राजनीति में निपुण व्यक्ति का या राजा का काम एक समान नीति से चली नहीं सकता। कूटनीति के बिना राज्य को चलाना कठिन हो जाता है। अतः राजा को कूटनीति का भी आश्रय लेना पड़ता है।
वहीं पर कवि ने एक ष्अच्छे राजा के छः गुणों को भी प्रकाशित किया है। जिनमें लोक मर्यादा का परिपालन रूपी आज्ञा, प्रजापालन रूपी कीर्ति, ब्रह्मज्ञ विद्वानों का परिपालन, दानशीलता, धन का सदुपयोग, और मित्रों का संरक्षण परिगणित हैं। कवि ने लोगों से गुणवान् राजा की ही प्रशंसा या आश्रयण करने के लिए कहा है"।

"आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्र संरक्षणञ्च।
येषामेते षड्गुणाः न प्रवृत्ताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण"(14)।।

इन्होंने सच्चे सेवकों की बड़ी प्रशंसा की है और सेवाधर्म को बहुत कठिन दुःसाध्य बताया है जो योगियों के लिए भी अगम्य है।

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"(15) ।।

संसार में ऐसे महापुरूष प्रणम्य हैं जो सदा सज्जन संगति चाहते हैं, दूसरे के गुणों को प्रेम करते हैं, गुरु के विषय में नम्र व्यवहार रखते हैं, वेदान्तादि विद्याभ्यास में लगे रहते हैं, अपनी पत्नी पर अनुराग रखते हैं, लोक निंदा से डरते हैं, परम देवता भगवान् शिव की भक्ति करते हैं, आत्म संयम रखते हैं और दुर्जन संसर्ग से दूर रहते है। ये निर्मल गुण जिनमें हैं उन महापुरुष को मेरा नमस्कार है"(16)।।
"सज्जन महापुरुष के स्वभाव सिद्ध गुणों का निर्देश किया है जो अत्यन्त श्लाघ्य एवं स्पृहणीय है" शविपदि धैर्यमथाऽभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुत्वा प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्"
(17)।।

इन्होंने यह माना है कि "संसार में आज्ञाकारी सुपुत्र, सत्कलत्र (पति–परायणा पत्नी) एवं सन्मित्र इन तीनों की प्राप्ति पुण्यवान् व्यक्ति को ही होती है।

देखें श्लोक–

"यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्,
एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते"(18)।।

अर्थात् जो अपने अच्छे चरित्र से पिता को प्रसन्न करे वही सुपुत्र है जो अपने पति का हित चाहती हैं वही पत्नी है और जो आपत्ति में तथा सुख में समान व्यवहार रखता है वही सन्मित्र है। इन तीनों को संसार में पुण्यवान् व्यक्ति ही प्राप्त करते हैं।
महाराज भर्तृहरि ने सज्जनता की परिणति और संसार में परोपकारी व्यक्ति की विनम्रता का बडा आदर पूर्वक बखान किया है।

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।।
अनुद्धताः सत्पुरुषाःसमृद्धिभिः,स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्"(19)।।

अर्थात् वृक्ष फलों के आने से झुक जाते हैं। मेघ नये जल से सर्वत्र अंतरिक्ष में फैल जाते हैं। सत्पुरुष संपत्तियों के द्वारा विनम्र होते हैं। परोपकारी जनों का यह स्वतः सिद्ध प्राकृतिक स्वभाव ही होता है, बनावटी नहीं"।।
कवि लोक शिक्षण के लिए सदाचार का विनम्र अनुरोध किया है। जो अत्यंत मार्मिक और सर्वग्राह्य है।

यथा–

"तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि में पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनान्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं,
कीर्तिं पालय दुःखिते गुरु दयामेतत्सतां चेष्टितम्" 20।।

अर्थात हे! मानव! यदि अपने जन्म को सफल करना चाहते हो तो तृष्णा या लोभ का त्याग करो, क्षमा धारण करो, गर्व छोड़ो, पाप में रुचि मत करो, सत्य बोलो, सत्पुरुषों के मार्ग पर चलो, विद्वानों की सेवा करो, पूज्य जनों का सम्मान करो, शत्रुओं को भी विनय से प्रशन्न रखो, विनम्रता की प्रसिद्धि करो, कीर्ति की रक्षा करो, दुखी जनों पर दया करो; यही सजनों का आचरण है।
नीतिज्ञ कवि राजा भर्तृहरि सभी को सर्वदा पुण्य करने की सलाह देते हुए हुए कहते हैं;

"वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तम्प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि"21।।

अर्थात् पूर्व जन्म या पूर्व काल में किए गए पुण्य, वन में, संग्राम में, शत्रु, जल या अग्नि के मध्य, महासागर अथवा पर्वत की चोटी पर, सुप्तावस्था में भी असावधान एवं विषम में भी संकटग्रस्त पुरुष की रक्षा करते हैं।
अतः नीतिकार भतृर्तृहरि जी ने अपने जीवन के अनुभव के द्वारा राजा से लेकर प्रजा तक विशिष्ट से लेकर सामान्य तक सभी व्यक्तियों को इन सभी बातों पर ध्यान रखने के लिए प्रेरित किया है। जो मानव जीवन सफल बनाने के लिए एक उत्कृष्ट उपदेश है तथा सभी के लिए उपयोगी है।

सन्दर्भः

1. भर्तृहरि नीति शतक परिशिष्ट श्लोक 1.
2. नी०श०मं०१.
3. नी०श०श्लो०2.
4. नी०श०श्लो०3.
5. रा०च०मा०
6. नी०श०श्लो०11.
7. नी०श०श्लो०17.
8. नी०श०श्लो०16 एवं 17.
9. नी०श०श्लो०१८.
10. नी०श०श्लो०20.
11. नी०श०श्लो०34.
12. नी०श०श्लो०38.
13. नी०श०श्लो०39.
14. नी०श०शूलो०40.
15. नी०श०श्लो०48.
16. नी०श०श्लो०52.
17. नी०श०श्लो०53.
18. नी०श०शलो०60.
19. नी०श०श्लो०62.
20. नी०श०श्लो०70.
21. नी०श०श्लो०101.